R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-19, अङ्क-1 जनवरी 2019 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख-समाचार पत्र

मङ्गलायतन

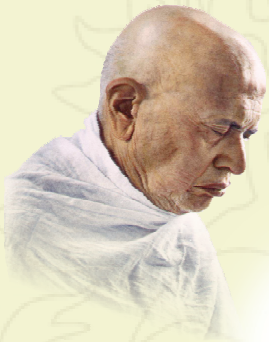

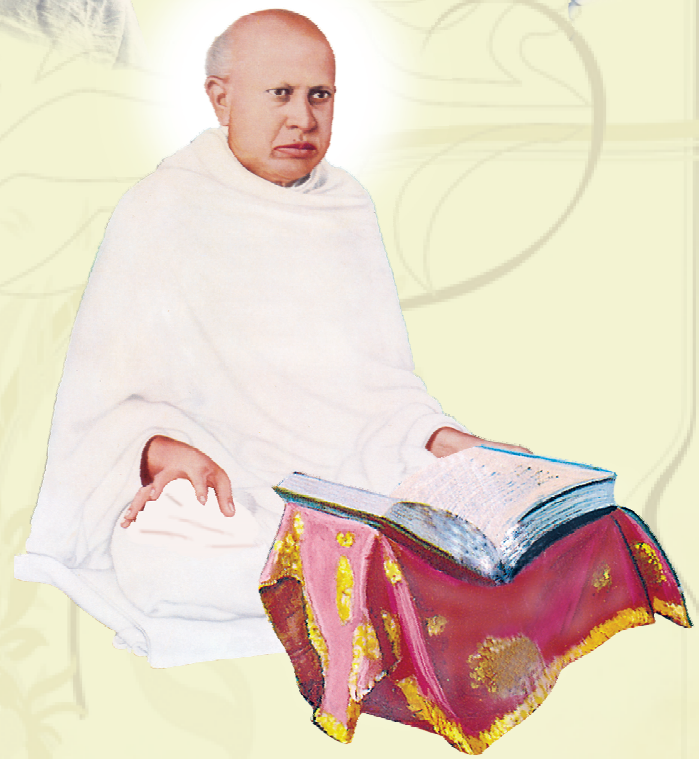

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन सत्र 19-20 प्रवेश प्रारंभ

(फार्म जमा करने की अन्तिम तिथि - 28 फरवरी 2019;
01 अप्रेल से 05 अप्रेल 2019 प्रवेश साक्षात्कार शिविर)

सद्धर्म प्रेमी बन्धुवर सादर जयजिनेन्द्र

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन मङ्गलायतन में प्रवेश प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। वर्तमान युग में अपने कोमलमति बालक और युवाओं में धर्म, संस्कार एवं नैतिक शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा देना चाहते हो तो अवश्य ही 28 फरवरी 2019 तक अपने प्रवेश फार्म मङ्गलायतन ऑफिस में जमा करायें।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन लगातार उन्नति के शिखर को छू रहा है। यहाँ से निकले मङ्गलार्थी उच्च स्तर की प्रशासनिक एवं राष्ट्रीय सेवाएँ देते हुए समाज को तत्त्वज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं। स्व-पर कल्याण करते हुए वीतरागी जिनमार्ग को घर-घर पहुँचा रहे हैं।

यदि आप भी चाहते हैं कि आज की पीढ़ी पाप के दलदल में न फँसे, सन्तोषपूर्वक आत्मकल्याण करते हुए अपना जीवन सफल करे तो अवश्य ही भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में अपने बालकों का प्रवेश करायें।

प्रवेश के योग्य अभयार्थी की पात्रता

(1) सातवीं कक्षा में कम से कम 60 प्रतिशत अंक से पास हो। (2) फार्म भरते समय छठी कक्षा में भी कम से कम 60 प्रतिशत अंक हों। (3) सातवीं कक्षा में अंग्रेजी माध्यम से ही पढ़ता हो। (4) शरीर में कोई असाध्य रोग न हो। (5) जैन धर्मानुसार अभक्ष्य भक्षण नहीं करता हो। (6) जैन धर्म पढ़ने की रुचि रखता हो।

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन की विशेषताएँ

(1) पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित वीतरागी तत्त्वज्ञान का गहरा अध्ययन। (2) धार्मिक, नैतिक, सांस्कारिक, सामाजिक, लौकिक, पारलौकिक, आध्यात्मिक, सैद्धांतिक आदि विद्याध्ययन करने का अवसर। (3) भारत के उच्चतम स्कूल डी.पी.एस. में पढ़ने का अवसर। (4) विश्व के प्रसिद्ध विद्वानों से अध्ययन करने का अवसर। (5) चहुँमुखी प्रतिभा एवं विकास के साधन (6) डी.पी.एस. के माध्यम से विश्वस्तरीय खेल, प्रतिस्पर्धा एवं व्यक्तित्व विकास का अवसर। (7) खेल एवं संगीत शिक्षा की विशेष व्यवस्था। (8) मङ्गलायतन द्वारा देश-विदेश में तत्त्वज्ञान आराधना / प्रभावना करने का अवसर। (9) आगामी उच्चस्तरीय शिक्षा की पूर्व में ही विशेष कोचिंग की व्यवस्था। (10) आत्मसम्मान एवं जिनधर्म की शिक्षापूर्वक उच्च आजीविका का अवसर।

शीघ्र ही आप अपने बालकों का फार्म भरकर, तीर्थधाम मङ्गलायतन के पते पर कोरियर द्वारा 700 रुपये के ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

कोरियर भेजने का पता — भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, तीर्थधाम मङ्गलायतन
द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरा रोड, अलीगढ़ - 202001 (उ.प्र.)
मोबा : 9997996346, 9756633800, 9897069969, 9027768528

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-19, अङ्क-1 (वी.नि.सं. 2544) जनवरी 2019

अपनी सुधि भूल आप...

अपनी सुधि भूल आप, आप दुःख उपायो ॥टेक॥
ज्यौं शुक नभचाल विसरि, नलिनी लटकायो ॥1॥

चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरशबोधमय विशुद्ध।
तजि जड़ रस-फरस रूप, पुद्गल अपनायो ॥2॥

इन्द्रिय सुख-दुःख में नित्त, पाग राग-रुष में चित्त।
दायक भवविपति वृन्द, बन्ध को बढ़ायो ॥3॥

चाह-दाह दाहै, त्यागो न ताह चाहै।
समतासुधा न गाहै जिन, निकट जो बतायो ॥4॥

मानुषभव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय।
'दौल' निजस्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायो ॥5॥

– पण्डित दौलतराम

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़
पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती ओखीबाई
धर्मपत्नी
श्री जसराजजी बागरेचा
हस्ते
श्री अशोककुमार जैन बागरेचा
बैंगलोर - 560019

क्या - कहाँ

'मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ'	5
प्रतिपादन करना है परमार्थ का	11
सम्यग्दर्शन के आठ अंग की कथा	15
अहो, स्व-तत्त्व का परम स्वभाव !	22
आचार्यदेव परिचय शृंखला	24
श्री पात्रकेसरी या पात्रस्वामी	24
आचार्य ऋषिपुत्र	27
उपदेश सिद्धांत रत्नमाला	29
समाचार-दर्शन	33

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

'मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ'

[अमेरली (सौराष्ट्र) में फाल्गुन शुक्ला एकम से पंचमी तक श्री जिनेन्द्र प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन। श्री समयसार गाथा 17-18]

आत्मा शरीर से भिन्न एक महान चैतन्यतत्त्व है। भाई, तुझे अपना कल्याण करना हो तो तेरा आत्मस्वभाव कैसा है, कितना है, वह जानना पड़ेगा। आत्मस्वरूप का माप अज्ञान से या राग से नहीं हो सकता। अंतर में ज्ञान द्वारा आत्मा को पहिचान, तभी तेरे जन्म-मरण का अंत आयेगा। जिस प्रकार राजा को पहिचानकर उसकी सेवा करने से धन के अर्थी को धन का लाभ होता है, उसी प्रकार जगत में सर्वश्रेष्ठ ऐसे इस चैतन्यराजा को पहिचानकर उसकी सेवा अर्थात् अनुभव करने से मोक्षार्थी को मोक्ष का लाभ होता है।

अरे, 'आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, निर्विकल्प है'—ऐसे अध्यात्म-विद्या के संस्कार तो प्राचीन काल में बालक को पालने में झुलाते-झुलाते माताएँ लोरियों में सुनाती थीं। वर्तमान में भी बाल-युवा-वृद्ध सर्व जीव शुद्ध ज्ञानानंदस्वरूप हैं; ऐसे संस्कार डालकर आत्मप्रतीति करना चाहिए। भाई, तू अनादि से शुभाशुभराग का सेवन कर रहा है, परंतु उससे तुझे किंचित् सुख की प्राप्ति नहीं हुई; सुख का भंडार तो इस चैतन्यराजा के पास है, उसे पहिचानकर उसकी सेवा कर, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव कर तो तुझे सुख की प्राप्ति होगी।

आत्मा को कैसा अनुभवना ? यह बात इस समयसार में समझायी है; उसमें यह 17-18वीं गाथा पढ़ी जा रही है। यह आत्मा के अनुभव की बड़ी ऊँची बात है; जिसे सुखी होना हो, उसे यह बात समझने जैसी है; इसे समझने पर ही सुख की प्राप्ति हो सकती है; शेष सब तो मृग-जल की भाँति व्यर्थ दौड़धूप है।

जिसे अपना हित करना हो और सुखी होना हो, उसे प्रथम तो ऐसा निर्णय करना चाहिए कि मैं इस शरीर से भिन्न एक आत्मा हूँ; पूर्वजन्म में भी

मैं ही था और यह शरीर छूटने के बाद भी मैं ही रहनेवाला हूँ। अरे रे! जीव अपने को भूलकर जगत के पाप में लगा रहता है, जगत के पदार्थों की रुचि और मूल्यांकन करता है और अपना मूल्य भूलकर दुःखी होता है। परंतु मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ, मैं अपने अनंत गुणों के वैभव से राजित-शोभित हूँ; इस प्रकार अपनी पहिचान करके उसकी महिमा और अनुभव करने से अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होता है। भाई, अनंत काल तक सुख प्राप्त हो—ऐसा सुख का पंथ संत तुझे बतलाते हैं; उस पंथ को पहिचानकर मोक्षनगरी में जाने का यह अवसर है।

अरे, एक गाँव से दूसरे गाँव जाना हो तो भी लोग पाथेय (कलेवा) साथ ले जाते हैं; तो फिर यह भव छोड़कर परलोक में जाने के लिए आत्मा की पहिचानरूपी पाथेय साथ लेना चाहिए या नहीं? आत्मा कहीं इसी भव जितना नहीं है; यह भव पूर्ण करके भी आत्मा तो अनंत काल तक अविनाशी रहनेवाला है; तो उस अनंत काल तक उसे सुख प्राप्त हो—ऐसा कोई प्रयत्न तो करो! ऐसा मनुष्य अवतार और सत्समागम का ऐसा अवसर मिलना अति दुर्लभ है। आत्मा की दरकार किए बिना ऐसा अवसर चूक जाएगा तो भव-भ्रमण के दुःख से तेरा छुटकारा कब होगा? अरे, तू चैतन्यराजा, तू स्वयं आनंद का नाथ! भाई, तुझे ऐसा दुःख शोभा नहीं देता। जैसे राजा अज्ञानवश अपने को भूलकर घूरे पर लोटे, उसी प्रकार तू अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर राग के घूरे पर लोट रहा है, परंतु वह तेरा पद नहीं है; तेरा पद तो चैतन्य से सुशोभित है, चैतन्य हीरा उसमें जड़ा हुआ है, उसमें राग नहीं है। ऐसे स्वरूप को जानने से तुझे महा आनंद होगा।

अहा, आत्मा को राजा की उपमा देकर उसकी पहिचान करायी है। राजा उसे कहा जाता है जो स्वाधीन हो, जिसे किसी दूसरे की सेवा न करना पड़े... पराधीनता न हो। वह ऐसा पुण्य लेकर आया हो कि प्राकृतिकरूप से ही उसके राज्य में हीरा-मोती आदि बहुमूल्य पदार्थ पैदा होते हों, ढ़ेरों अनाज पैदा होता हो; ऐसे राजा की सेवा करने से वह प्रसन्न होकर सेवा

करनेवाले को इच्छित धन देता है। राजा का पुण्य विशिष्ट होता है; अपने राज-लक्षणों द्वारा वह दूसरों की अपेक्षा अलग दिखाई देता है। उसी प्रकार यह आत्मा तो चैतन्यऋद्धि का स्वामी परमार्थ राजा है, वह स्वाधीन है, स्वयं सुखस्वभावी है, उसे सुख के लिए किसी अन्य की सेवा नहीं करना पड़ती; सुख के लिए बाह्य विषयों का या राग का सेवन करना पड़े—ऐसा पराधीन वह नहीं है। चैतन्यराजा को उसके लक्षणों से पहिचानकर उसकी सेवा करने से वह प्रसन्न होकर मोक्षसुख प्रदान करता है। चैतन्य के अनुभवरूप विशेष लक्षण द्वारा इस चैतन्यराजा की पहिचान होती है। भाई, तू अंतर में देख! अंतर में जो 'यह चैतन्य... चैतन्य...' ऐसा अनुभव हो रहा है, वही तू है। मोक्षार्थी बनकर अंतर में ऐसे आत्मा की खोज कर।

अरे, इस भव-दु:ख की अब मुझे थकान लगी है, जगत का बड़प्पन मुझे नहीं चाहिए, मैं तो आत्मा की मुक्ति चाहता हूँ, ऐसा विचार करके, आत्मा का अर्थी होकर जो उसकी खोज करे, उसे आत्मा का पता लग सकता है—

'अेम विचारी अंतरे, शोधे सद्गुरु योग;
काम एक आत्मार्थनुं बीजो नहिं मन रोग।'

(श्रीमद् राजचन्द्र)

यह तो जिसे आत्मा की आवश्यकता हो, उसकी बात है। यह चार गति के अवतार मुझे अब नहीं चाहिए; संसार के वैभव में कहीं मेरा सुख नहीं है, मुझे अपने आत्मा का अनुभव चाहिए, उस अनुभव में ही मेरा सुख है। इस प्रकार मोक्षार्थी होकर हे जीव! तू अपने आत्मा को खोज। चैतन्य के वेदनरूप तू अपने आत्मा को खोज। चैतन्य के वेदनरूप स्वलक्षण द्वारा उसे पहिचान।

अरे, चैतन्य का कल्याण करने के लिए जो जागृत हुआ, उसे जगत की प्रतिकूलता कैसी? अनंत प्रतिकूलता का समूह भले हो, परंतु भीतर मेरा चैतन्यतत्त्व आनंद का धाम है; इस प्रकार जो अंतर में उतरता है, वह मोक्ष के परम सुख का अनुभव करता है। 'अहा, ऐसा अनुभव हमने किया है....

हे माता! ऐसे अनुभव की साक्षी पूर्वक कहते हैं कि अब संसार में पुन: अवतार धारण नहीं करेंगे; अंतर में देखे हुए आत्मा के पूर्ण आनंद को साधकर अब मोक्ष में जाएंगे। इसलिए हे माता! तू प्रसन्न होकर आनंदपूर्वक आज्ञा दे।' इस प्रकार छोटे-छोटे बालक भी माता की आज्ञा लेकर मोक्ष को साधने के लिए वन में चले जाते हैं और आत्मा के आनंद में झूलते-झूलते मोक्ष को साधते हैं।

ऐसे मोक्ष को साधने की जिसे जिज्ञासा हो, उसे उसकी रीति आचार्यदेव ने इस समयसार में बतलाई है। अंतर में चैतन्यस्वरूप से स्वयं अपने पहिचानकर श्रद्धा करते ही राग के वेदन से भिन्न होकर आत्मा अपने को आनंदस्वरूप अनुभव करता है। ऐसे अनुभव द्वारा ही जन्म-मरण के फेरे टलते हैं और आत्मा मोक्ष को साधता है।

आत्मा की पर्याय में अनेक भाव मिश्र हैं; चेतनभाव और रागादिभाव —ऐसे अनेक भाव अनुभव में आते हैं; उनमें ऐसा विवेक करना कि इनमें जो चेतनभावरूप से अनुभव में आता है, वह मैं हूँ और जो रागादि पुण्य-पापरूप से अनुभव में आता है, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इस प्रकार चेतन की अनुभूतिस्वरूप अपने को जानकर श्रद्धा करना कि 'यह अनुभूति ही मैं हूँ '—सो सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। ऐसे ज्ञान-श्रद्धानपूर्वक आत्मा में नि:शंक स्थिति होती है। इस प्रकार साधक आत्मा की सिद्धि होती है, अन्य किसी प्रकार नहीं होती।

भाई, इस समय एकाग्र होकर अपने आत्मा की बात को सुन! आत्मा की बात सुनते समय अपना चित्त बाह्य में इधर-उधर घुमायेगा तो आत्मा का स्वरूप तू कब समझेगा? अहा, ऐसा अचिंत्य आत्मा वाणी से अगोचर, उसका स्वरूप अनुभव में लेने के लिए तो उपयोग कितना एकाग्र करना चाहिए? जिसकी प्रतीति होने पर अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आये, उसकी महिमा की क्या बात! अरे, एक बार ऐसे आत्मा को लक्ष्य में तो ले! जिसकी

जाति पाप और पुण्य दोनों से भिन्न, जगत के किसी पदार्थ के साथ जिसकी तुलना न हो सके, ऐसा भगवान आत्मा तू स्वयं, उसे ज्ञान में लेते ही अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। जिस प्रकार गन्ने में मीठा रस भरा है, गन्ना स्वयं ही मीठा है; उसी प्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा स्वयं आनंदरसमय है, उसमें सर्वत्र आनंद ही भरा है, जिसे जानते ही आनंद के अपूर्व झरने झरें और भव के दु:ख दूर हो जाएं। राग से पार वीतरागी सुख का भंडार आत्मा स्वयं है।

भाई! क्या तुझे परभावों का दु:ख नहीं लगा? क्या तुझे संसार-भ्रमण की थकान नहीं लगी? यदि लगी हो तो परभावों से भिन्न तेरा चैतन्यतत्त्व आनंद का धाम है। उसमें आकर विश्राम कर! चैतन्यतत्त्व को जानते ही तेरी अनंतकालीन थकान उतर जाएगी और चैतन्य के अपूर्व सुख का तुझे अनुभव होगा। अरे, एक बार झाँककर अपने स्वरूप को देख तो सही! तू बाह्य विषयों का अनुसरण कर रहा है, उनमें तो दु:ख है, उनके बदले अपने आनंदस्वरूप का अनुसरण कर, उसका अनुभव कर, तो तुझे महा आनंद होगा। गुजराती भजन में कहा है कि—

'अनुभवीने अेटलुं रे... आनंदमां रहेवुं रे...
भजवा परब्रह्मने, बीजुं कांई न कहेवुं रे...'

भाई, करने जैसा तो यही है। परब्रह्म यह आत्मा स्वयं है, उसे पहिचानकर उसका भजन करना। तू चैतन्यानंद का पर्वत है, परंतु राग में एकता की ओट में तुझे राग से भिन्न अपना महान तत्त्व दिखाई नहीं देता। तुझे पुण्य-पाप दिखाई देते हैं, बाहरी वस्तुएँ दिखाई देती हैं और अपना चिदानंद आत्मा ही तुझे दिखाई नहीं देता! सबको देखनेवाला अपना आत्मा ही तुझे दिखाई नहीं देता? ....अरे, आश्चर्य की बात है कि स्वयं ही अपने को दिखाई नहीं देता! भाई, अज्ञान से तू बहुत दु:खी हुआ, फिर भी तुझे अपनी दया नहीं आती? तुझे अपनी सच्ची दया आती हो, और अपने आत्मा

को दु:ख से छुड़ाना हो तो प्रथम अपने आत्मा के अनुभव का कार्य कर। अन्य सबका प्रेम छोड़कर, चैतन्यस्वरूप आत्मा स्वयं कैसा है, उसे पहिचानकर अपने आत्मा को इस भव के भयंकर दु:खों से बचा! भाई, भवदु:ख से आत्मा को छुड़ाने का यह अवसर है। आत्मा का सच्चा स्वरूप लक्ष में लेने से तेरे निजगृह का चैतन्यभंडार खुल जाएगा। अहो, ऐसी मेरी वस्तु! ऐसा आनंदधाम मैं स्वयं! मेरा आत्मा अद्भुत है! वही मेरा विश्राम-स्थल है। ऐसी प्रतीति होने पर उसी में तू नि:शंकरूप से स्थित रहेगा। इस प्रकार तुझे अपने साध्यरूप शुद्ध आत्मा की सिद्धि होगी; यह मुक्ति का उपाय है। जिन भगवंतों की यहाँ स्थापना होती है, उन भगवंतों ने ऐसे उपाय से आत्मा का सेवन करके मुक्ति प्राप्त की है और जगत के जीवों को भी इसी मार्ग का उपदेश दिया है। हे आत्मा के अर्थी जीवो! तुम ऐसे मार्ग को पहिचानकर उसका सेवन करो, अर्थात् रागादि से पार चैतन्यतत्त्व जैसा है, वैसा जानकर श्रद्धा में लेकर उसका अनुभव करो; जिससे जन्म-मरण से छूटकर तुम आत्मा के परम आनंद को प्राप्त होंगे।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

सच्चा सुख

- जीव सुख चाहते हैं, परंतु वे राग में और संयोग में सुख को ढूँढ़ते हैं।
- भाई, सुख राग में होता है या वीतरागता में ?
- वीतरागता ही सुख है, उसे जीव ने कभी नहीं जाना।
- जिसने राग में और पुण्य में सुख माना, उसे मोक्ष की श्रद्धा नहीं है।
- मोक्ष तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, रागमय नहीं है।
- अरिहंत और सिद्धभगवंतों के सुख को धर्मी जीव ही जानते हैं।
- स्व-पर के भेदज्ञानपूर्वक वीतरागविज्ञान द्वारा ही वह सुख अनुभव में आता है।

प्रतिपादन करना है परमार्थ का।
तू परमार्थतत्त्व को अनुभव में लेना

बीच में भेद के विकल्प आयें उनसे ज्ञान को ऊपर रखना

[श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन]

ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप आत्मा है; ऐसे गुण-गुणी भेदरूप व्यवहार द्वारा परमार्थतत्त्व का कथन किया गया; उस परमार्थ तत्त्व को जिसने अनुभव में ले लिया और भेद का अवलंबन छोड़ दिया; उसके लिए 'व्यवहार, वह परमार्थ का प्रतिपादक' कहा है। लेकिन जो व्यवहार के भेद-विकल्प में अटक जाता है और भेद के विकल्प को लाँघकर अभेद में न पहुँचे, उसको समझाते हैं कि हे भाई! व्यवहार तो समस्त अभूतार्थ है; व्यवहार स्वयं कहीं परमार्थ नहीं। व्यवहार को परमार्थ का प्रतिपादक तभी कहा जाता है, जब उस व्यवहार का लक्ष्य छोड़कर अभेदरूप परमार्थ को लक्ष्य में ले। परमार्थ कहो या भूतार्थ कहो, वह एक शुद्ध ज्ञायकभाव है, ऐसे भूतार्थस्वभाव का शुद्धनय द्वारा अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन का प्रतिपादन करनेवाला यह 11 वाँ सूत्र जैन सिद्धान्त का प्राण है, वीतरागी संतों का हार्द समयसार की 11वीं गाथा में है।

व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है—ऐसा ऋषियों ने दर्शाया है। जो जीव भूतार्थ का आश्रय करते हैं, वे निश्चय से सम्यग्दृष्टि हैं। देखो, यह सम्यग्दर्शन का अमोघ उपाय! सर्व संतों के अनुभव का हार्द इस गाथा में समा जाता है।

प्रथम 'ज्ञान, वह आत्मा' ऐसे व्यवहार को परमार्थ का प्रतिपादक कहा, और फिर वह 'व्यवहारनय अनुसरण करनेयोग्य नहीं है'—ऐसा भी कहा। अब, यदि व्यवहार वह परमार्थ का प्रतिपादक है तो उस व्यवहारनय का क्यों अनुसरण नहीं करना? ऐसे प्रश्न का स्पष्टीकरण इस गाथा में है तथा सम्यग्दृष्टि के अनुभव का भी वर्णन है।

हे भाई! आत्मा के भूतार्थ-सत्य स्वभाव को देखनेवाला शुद्धनय ही भूतार्थ है, व्यवहारनय तो अभूतार्थभाव को देखनेवाला होने से अभूतार्थ है। उस अभूतार्थस्वरूप, अशुद्धस्वरूप, रागवान और संयोगवान आत्मा को देखने से सम्यग्दर्शन नहीं होता; शुद्धनय द्वारा शुद्ध-भूतार्थ आत्मा का अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है। इस प्रकार भूतार्थ का आश्रय करनेवाले ही सम्यग्दृष्टि हैं; इसलिए व्यवहारनय अनुसरण करनेयोग्य नहीं है; यह सिद्धांत जैनदर्शन का प्राण है, मोक्षमार्ग का मूल है।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है, उसकी यह बात है।

आत्मा को कर्मसंबंधवाला—अशुद्ध कहनेवाला व्यवहार हो, या 'ज्ञान, वह आत्मा' ऐसा गुणभेद कहनेवाला व्यवहार हो, किसी भी प्रकार का हो, वह सब व्यवहार आत्मा के सहज एक ज्ञायकस्वभाव को नहीं बतलाता परंतु अभूतार्थरूप भावों को (संयोग को, राग को या भेद को) बतलाता है, और ऐसे आत्मा का अनुभव करने से—श्रद्धा करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता, इसलिए वह सब व्यवहार आश्रय करने योग्य नहीं है। शुद्धनय ही अंतर्मुख होकर आत्मा का सहज एक ज्ञायकस्वभावरूप अनुभव करता है; इसलिए उस शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। उसका आश्रय करना अर्थात् शुद्धनय अनुसार शुद्ध आत्मा का अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है; वही जैनदर्शन का आत्मा है। जहाँ ऐसा शुद्धनयरूप प्राण है, वहीं जैनधर्म जीवित है। ऐसे शुद्धनय से शुद्धात्मा के ज्ञान-श्रद्धान बिना जैनधर्म नहीं होता।

द्रव्य, वह द्रव्य है; पर्याय, वह पर्याय है; पर्यायरूप से तो पर्याय सत् है, लेकिन पर्याय, वह संपूर्ण द्रव्य नहीं। जब भूतार्थस्वभाव का आश्रय करके पर्याय परिणमित हुई, तब अभेदस्वभाव एक ही अनुभव में रहा और पर्याय गौण हो गई, अर्थात् वह अभूतार्थ हो गई। पर्याय है ही नहीं, इसलिए उसे अभूतार्थ कही है, ऐसा नहीं। पर्यायरूप से पर्याय है, लेकिन अभेद स्वभाव के अनुभव में उसका लक्ष्य नहीं रहता, इसलिए वह पर्याय अभूतार्थ है।

आत्मवस्तु द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप है। ऐसी वस्तु, वह प्रमाण है। ऐसा

आत्मा पर से बिलकुल भिन्न है। अब अपने में द्रव्य और पर्याय ऐसे दो अंश हैं। उनमें पर्याय, वह व्यवहारनय का विषय है और शुद्धनय का विषय भूतार्थस्वभाव है-उसमें पर्याय गौण है।

द्रव्यअंश, पर्यायअंश—ऐसे दो अंश हैं; उनमें द्रव्य, वह पर्याय नहीं; पर्याय, वह द्रव्य नहीं—ऐसी भिन्नता है, लेकिन वस्तु में भिन्नता नहीं है।

आत्मा में पर्याय है ही नहीं—ऐसा कोई निषेध नहीं है। लेकिन अभेद अनुभव करने का प्रयोजन होने से, अभेद को मुख्य करके उसको निश्चय कहकर उसका आश्रय कराया है, और भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहकर उसका निषेध किया है। क्योंकि पर्याय के भेदरूप विशेष पर लक्ष्य रहने से समभाव-निर्विकल्पदशा नहीं होती परंतु रागादि विकल्प उत्पन्न होते हैं, और अभेदरूप भूतार्थस्वभाव सामान्य है, उसके आश्रय से समभाव अर्थात् निर्विकल्पदशा होती है। इसलिए अभेदरूप सामान्य के अनुभव में पर्याय के भेद का अभाव ही कहा है। वहाँ पर्याय है तो अवश्य, पर्याय ने ही अंतर्मुख होकर सामान्य का आश्रय किया है, लेकिन वहाँ अभेद में भेद गौण हो जाता है, उसका लक्ष्य नहीं रहता।

सम्यग्दर्शन के अनुभव में रागादि अशुद्धभावोंरूप असद्भूतव्यवहार तो नहीं है, और 'यह शुद्ध पर्याय इस द्रव्य की है' ऐसे भेदरूप सद्भूत-व्यवहार भी सम्यग्दर्शन के विषय में नहीं रहता। अभेद को अमेचक अर्थात् शुद्ध कहते हैं, और भेद को मेचक अर्थात् अशुद्ध कहते हैं। भले ही निर्मल पर्याय का भेद हो, परंतु उस भेद का विकल्प तो अशुद्ध है, भेद के आश्रय से अशुद्धता होती है। भेदरूप पर्यायदृष्टि में राग-द्वेष अशुद्धता का अनुभव होता है और अभेदरूप सामान्य का आश्रय लेने से वीतरागी समभाव होता है। अभेद के अनुभव में पर्याय होने पर भी उसका लक्ष्य नहीं है, इसलिए वह अभूतार्थ है।

वस्तु में सामान्य और विशेष ऐसे दो अंश हैं। उनमें विशेष अंश, वह सामान्य नहीं और सामान्य अंश, वह विशेष नहीं; परंतु एक साथ दोनों अंश हैं।

अब केवल पर्याय-अंश से वस्तु को देखने पर मिथ्यात्व होता है। अनादि से जीव को पर्यायबुद्धि तो है; अब सामान्य वस्तु की ओर झुककर चलनेवाली पर्याय ने उसका आश्रय लिया वहाँ सामान्य के लक्ष्य से पर्याय का लक्ष्य छूट गया, इसलिए वहाँ पर्याय नहीं है, ऐसा कहा है। वहाँ परमस्वभाव में पर्याय एकाग्र होकर अभेद का अनुभव करती है। ऐसे अनुभव में द्रव्य के परमस्वभाव का आत्मलाभ है।

त्रैकालिक अखंड स्वभाव का अनुभव, वह भूतार्थ का आश्रय है, और उस अनुभव में पर्याय के किसी भी भेद का लक्ष्य नहीं रहता; वहाँ पर्याय है लेकिन वह गौण हो जाती है। इसलिए उसका लक्ष्य छूट जाता है और एक भूतार्थ सर्वोपरि परमतत्त्व ही अनुभूति में प्रकाशमान रहता है।

सम्यग्दर्शन में सत्यवस्तु का स्वीकार होता है। वह सत्य अर्थात् क्या? उसका यह वर्णन है। शुद्धनय के विषयरूप एक अभेद स्वभाव है, वह भूतार्थ है और व्यवहारनय के विषयरूप पर्यायभेद आदि अभूतार्थ हैं। देखो, इसमें कहीं वेदांत जैसा पर्याय का अभाव नहीं है, पर्यायरूप धर्म तो सत् में है, लेकिन शुद्धनय से एक अभेद के मुख्य अनुभव में पर्याय का भेद नहीं रहता, इसलिए पर्याय को गौण करके उसको असत् कहा है। यह साधकदशा की बात है। जिसे स्वसन्मुख होकर वस्तु की शुद्धता को साधना है—ऐसा जीव क्या करता है? कि अंतर्मुख होकर भूतार्थस्वभाव का आश्रय करता है, और पर्याय का (शुद्ध या अशुद्ध समस्त भेदों का) आश्रय छोड़ता है। एक शुद्ध वस्तु के अनुभव में पर्याय की एकता का लक्ष्य छूट जाता है। पर्याय तो द्रव्य के आश्रय में प्रविष्ट हो गई, वहाँ उस पर्याय को पर्याय का लक्ष्य नहीं रहा। एकाकार ज्ञायक वस्तु के अनुभव में ही पर्याय मग्न हुई, परम आनंद का ही अनुभव रहा। इसलिए ऐसे आत्मा को सच्चा आत्मा माना, उसे भूतार्थ कहा, उसे सत्यार्थ कहा, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन कहा।—ऐसा अनुभव, वह जैनधर्म है। इस गाथा में उसका स्वरूप दर्शाया है, इसलिए यह गाथा जैनधर्म का प्राण है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

सम्यग्दर्शन के आठ अंग की कथा

सम्यक्तयुत आचार ही संसार में एक सार है,
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ-सौ बार है।
उनके गुणों के कथन से गुण ग्रहण करना चाहिए,
अरु पापियों का हाल सुनकर पाप तजना चाहिए॥

(6) स्थितिकरण अंग में प्रसिद्ध वारिषेण मुनि की कथा

[पहली नि:शंक अंग में प्रसिद्ध अंजनचोर की कथा, दूसरी नि:कांक्ष अंग में प्रसिद्ध सती अनंतमती की कथा, तीसरी निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध उदायन राजा की कथा, चौथी अमूढ़दृष्टि अंग में प्रसिद्ध रेवतीरानी की कथा और पाँचवीं उपगूहन अंग में प्रसिद्ध जिनेन्द्र भक्त सेठ की कथा आपने पढ़ी; अब छठवीं कथा आप यहाँ पढ़ेंगे।]

महावीर भगवान के समय में राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। चेलनादेवी उनकी महारानी और वारिषेण उनका पुत्र था। वारिषेण के अति सुंदर बत्तीस रानियाँ होते हुए भी वह बहुत वैरागी तथा आत्मज्ञान का धारक था।

एक बार राजकुमार वारिषेण उद्यान में ध्यान कर रहे थे, इतने में विद्युत् नाम का चोर एक मूल्यवान हार की चोरी करके भाग रहा था; उसके पीछे सैनिक भाग रहे थे। मैं पकड़ा जाऊँगा, इस डर के कारण हार को वारिषेण के आगे फेंककर वह चोर छिप गया, राजकुमार को ही चोर समझकर राजा ने फाँसी की सजा दी, परंतु जब बधिक ने राजकुमार पर तलवार चलाई, तब वारिषेण के गले में तलवार के बदले पुष्पों की माला हो गई, तथापि राजकुमार तो अपने ध्यान में मग्न थे।

ऐसा चमत्कार देखकर चोर को पश्चाताप हुआ। उसने राजा से कहा

कि मैं हार का चोर हूँ, मैंने ही हार की चोरी की थी, यह राजकुमार तो निर्दोष हैं। इस बात को सुनकर राजा ने राजकुमार से क्षमा माँगी और राजमहल में आने को कहा।

परंतु वैरागी वारिषेणकुमार ने कहा—पिताजी! इस असार संसार में अब जी भर गया है; राजपाट में कहीं भी मेरा मन नहीं लगता, मेरा चित्त तो एक चैतन्यस्वरूप आत्मा को ही साधने में मग्न है, अब मैं दीक्षा ग्रहण करके मुनि होऊँगा। ऐसा कहकर एक मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की... और आत्मा को साधने में मग्न हो गए।

अब, राजमंत्री का पुत्र पुष्पडाल था, वह बचपन से ही वारिषेण का मित्र था और उसका विवाह अभी कुछ ही दिन पहले हुआ था; उसकी स्त्री बहुत सुंदर नहीं थी। एकबार वारिषेण मुनि घूमते-घूमते पुष्पडाल के यहाँ पहुँचे और पुष्पडाल ने विधिपूर्वक आहारदान दिया... इस अवसर पर अपने मित्र को धर्म प्राप्त कराने की भावना मुनिराज को जागृत हुई। आहार करके मुनिराज वन की ओर जाने लगे, विनयवश पुष्पडाल भी उनके पीछे-पीछे गया। कुछ दूर चलने के बाद उसको ऐसा लगा कि अब मुनिराज मुझे रुकने को कहें और मैं घर पर जाऊँ। लेकिन मुनिराज तो चले ही जाते हैं... तथा मित्र से कहते ही नहीं कि अब तुम रुक जाओ!

पुष्पडाल को घर पहुँचने की आकुलता होने लगी। उसने मुनिराज को स्मरण दिलाने के लिए कहा कि—बचपन में हम इस तालाब और आम के पेड़ के नीचे साथ खेलते थे, यह वृक्ष गाँव से दो-तीन मील दूर है... हम सब गाँव से दूर आ गए हैं....

—यह सुनकर भी वारिषेण मुनि ने उससे रुक जाने को नहीं कहा। अहा, परम हितैषी मुनिराज मोक्षमार्ग को छोड़कर संसार में जाने को कैसे कहें ? मुनिराज की तो यही भावना है कि मेरा मित्र भी मोक्षमार्ग में मेरे साथ ही आये—

हे सखा, चल न हम साथ चलें मोक्ष में,
छोड़ें पर भाव को झूलें आनंद में;
जाऊँ मैं अकेला और तुझे छोड़ दूँ?
चल न तू भी मेरे साथ ही मोक्ष में...

अहा, मानो अपने पीछे-पीछे चलनेवाले को मोक्ष में ले जा रहे हों, इस प्रकार परम निस्पृहता से मुनि तो आगे ही आगे चले जा रहे हैं। पुष्पडाल भी संकोचवश उनके पीछे-पीछे चला जा रहा है।

चलते-चलते वे आचार्य महाराज के पास पहुँचे और वारिषेण मुनि ने कहा—प्रभो! यह मेरा बचपन का मित्र है, और संसार से विरक्त होकर आपके पास दीक्षा लेने आया है। आचार्य महाराज ने उसे निकट भव्य जानकर दीक्षा दे दी। अहा, सच्चा मित्र तो वही है जो जीव को भव-समुद्र से पार करे।

मित्र के आग्रहवश पुष्पडाल यद्यपि मुनि हो गया और बाह्य में मुनि के योग्य क्रियाएँ भी करने लगा, परंतु उसका चित्त अभी भी संसार से छूटा न था। भावमुनिपना अभी उसे नहीं हुआ था; प्रत्येक क्रिया करते समय उसे अपने घर की याद आती थी। सामायिक करते समय भी बारंबार उसे अपनी पत्नी स्मरण होता था। वारिषेणमुनि उसके मन को स्थिर करने के लिए उसके साथ ही रहकर उसे सदैव उत्तम ज्ञान-वैराग्य का उपदेश देते थे, परंतु पुष्पडाल का मन अभी धर्म में स्थिर नहीं हुआ था।

ऐसा करते-करते 12 वर्ष बीत गए। एक बार वे दोनों मुनिवर महावीर भगवान के समवसरण में बैठे थे, उस समय इन्द्रों ने भगवान की स्तुति करते हुए कहा कि—हे नाथ! इस राज-पृथ्वी को छोड़कर आप मुनि हुए, जिससे पृथ्वी अनाथ होकर आपके विरह में झूरती है और उसके आँसू इस नदी के रूप में बह रहे हैं।

अहा, इन्द्र ने तो स्तुति द्वारा भगवान के वैराग्य की स्तुति की; लेकिन जिसका चित्त अभी वैराग्य में नहीं लगा था, उस पुष्पडाल को तो वह श्लोक

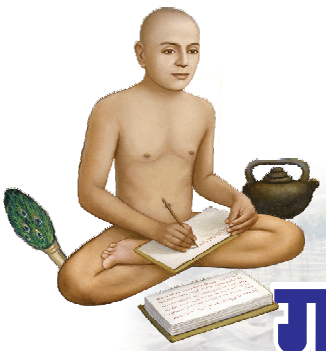

तीर्थधाम मङ्गलायतन के

सोलहवें वार्षिकोत्सव

के अवसर पर आयोजित

गुरुवाणी मंथन शिविर

शुक्रवार, 01 फरवरी से बुधवार, 06 फरवरी 2019

आदरणीय सद्धर्मानुरागी बन्धुवर

सादर जयजिनेन्द्र !

आपको यह मंगल संदेश प्रेषित करते हुए हम आह्लादित हैं कि वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की आराधना और प्रभावना में समर्पित पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तदभक्त बहिनश्री चंपाबेन के पुनीत प्रभावनायोग में निर्मित ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** अपनी स्थापना के सोलह वर्ष पूर्ण कर सत्रहवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इस पावन अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना पर आधारित **गुरुवाणी मंथन शिविर एवं वार्षिकोत्सव** के मांगलिक कार्यक्रम **शुक्रवार, 01 फरवरी से बुधवार, 06फरवरी 2019** तक अत्यन्त उल्लास एवं भक्तिपूर्ण वातावरण में आयोजित किये जा रहे हैं।

इस अवसर पर आयोजित कार्यक्रमों में जिनेन्द्र पूजन भक्ति के अतिरिक्त पूज्य गुरुदेवश्री के विविध ग्रंथों की गाथाओं पर सीडी प्रवचन एवं उन पर आधारित विशेष व्याख्याओं का लाभ **पण्डित वीरेन्द्र जैन, आगरा; पण्डित रजनीभाई दोशी, हिम्मतनगर; पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजोलियां; पण्डित प्रकाश छाबड़ा, इन्दौर** के माध्यम से प्राप्त होगा। पण्डित मनीष शास्त्री, पिड़ावा; पण्डित संजय शास्त्री, मङ्गलायतन द्वारा विधान का कार्यक्रम सम्पन्न कराया जाएगा। ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** के सभी स्थानीय विद्वान यहाँ उपस्थित रहेंगे ही। हमारा आपसे अनुरोध है कि इस पावन अवसर पर आप तो सपरिवार इष्टमित्रों सहित पधारें ही; साथ ही अपने प्रिय साधर्मीजनों को भी अधिक से अधिक संख्या में पधारने हेतु प्रेरित करें - ऐसा भावभीना आमन्त्रण है।

झण्डारोहणकर्ता -	श्री अभिषेक जैन परिवार, साहिबाबाद
विधान आयोजनकर्ता-	श्री अशोककुमार जैन मधु जैन, श्री अनिलकुमार जैन सुनीता जैन परिवार, देहरादून
मंगल कलश विराजमानकर्ता -	श्री राजेन्द्रकुमार जैन बीना जैन परिवार, देहरादून; श्री जैनबहादुर जैन परिवार, कानपुर श्री राकेश जैन परिवार, लखनऊ; श्री अरविन्दकुमार जैन रेखा जैन, जलेसर

शिविर आमन्त्रणकर्ता :

श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई

श्री विमलकुमार जैन कुसुम जैन, नीरु कैमिकल्स, दिल्ली

- निवेदक -

अजितप्रसाद जैन, अध्यक्ष / स्वप्निल जैन, महासचिव

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.)

सम्पर्कसूत्र एवं कार्यक्रम स्थल :

सुधीर जैन शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन, डीपीएस सीनियर विंग के पास, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी, हाथरस (उ०प्र०)

Mob. : 9997996346, 9897380208 www.mangalayatan.com info@mangalayatan.com

सुनकर ऐसा लगा कि अरे ! मेरी स्त्री भी इस पृथ्वी की भाँति बारह वर्ष से मेरे बिना दु:खी होती होगी। मैंने बारह वर्ष से उसका मुँह भी नहीं देखा, मुझे भी उसके बिना चैन नहीं पड़ता, इसलिए चलकर उसकी खबर ले आऊँ। कुछ समय और उसके साथ रहकर फिर दीक्षा ग्रहण कर लूँगा।

ऐसा विचार कर पुष्पडाल तो किसी से पूछेताछे बिना घर की ओर चल दिया। वारिषेणमुनि उसकी गतिविधि को समझ गए; हृदय में मित्र के प्रति धर्मवात्सल्य की भावना जागृत हुई कि किसी प्रकार मित्र को धर्म में स्थिर करना चाहिए। ऐसा विचार कर वह भी उसके साथ चल दिए, और उसे साथ लेकर अपने राजमहल में आये।

मित्र सहित अपने पुत्र को महल में आया देखकर चेलना रानी को आश्चर्य हुआ कि क्या वारिषेण मुनिदशा का पालन न कर सकने से वापिस आया है !—ऐसा उन्हें संदेह हुआ। उसकी परीक्षा के लिए एक सोने का आसन और एक लकड़ी का आसन रखा, लेकिन वैरागी वारिषेणमुनि तो वैराग्यपूर्वक लकड़ी के आसन पर बैठ गए। इससे विचक्षण चेलनादेवी समझ गईं कि पुत्र का मन तो वैराग्य में दृढ़ है, उसके आगमन का अन्य कोई प्रयोजन होगा।

वारिषेणमुनि के आगमन से गृहस्थाश्रम में रही हुईं 32 रानियाँ उनके दर्शन करने को आईं। राजमहल का अद्‌भुत वैभव और ऐसी सुंदर 32 रानियों को देखकर पुष्पडाल तो आश्चर्य में पड़ गया.... कि अरे ! ऐसा राजवैभव और ऐसी 32 रानियों के होने पर भी राजकुमार उनकी ओर देखते ही नहीं, उनका त्याग कर देने के बाद उनका स्मरण भी नहीं करते ! आत्मसाधना में अपना चित्त जोड़ दिया है। वाह, धन्य है इन्हें ! और मैं एक साधारण स्त्री का मोह भी नहीं छोड़ सकता। अरे ! मेरा बारह-बारह वर्ष का साधुपना व्यर्थ गया !

वारिषेणमुनि ने पुष्पडाल से कहा : हे मित्र ! अब भी तुझे संसार का मोह हो तो तू यहीं रुक जा और इस वैभव का उपभोग कर ! अनादि काल से जिस

संसार को भोगते हुए तृप्ति न हुई, उसे तू अब भी भोगना चाहता है... तो ले, तू इस सबका उपभोग कर! वारिषेणमुनि की बात सुनकर पुष्पडाल अत्यंत लज्जित हुआ, उसकी आँखें खुल गईं और उसका आत्मा जागृत हो गया।

राजमाता चेलना सब परिस्थिति समझ गईं, और पुष्पडाल को धर्म में स्थिर करने हेतु बोलीं, अरे मुनिराज! आत्म-साधना का ऐसा अवसर बारंबार प्राप्त नहीं होता, इसलिए तुम अपना चित्त मोक्षमार्ग में लगाओ। यह सांसारिक भोग तो इस जीव ने अनंत बार भोगे हैं, इनमें किंचित् सुख नहीं है... इसलिए उनका मोह छोड़कर मुनिधर्म में अपने चित्त को स्थिर करो।

वारिषेण मुनिराज ने भी ज्ञान-वैराग्य का सुंदर उपदेश दिया और कहा कि हे मित्र! अब अपने चित्त को आत्मा की आराधना में दृढ़ करो और मेरे साथ मोक्षमार्ग में चलो!

पुष्पडाल ने कहा—प्रभो! आपने मुझे मुनिधर्म से डिगते हुए बचाया है, और सच्चा बोध देकर मोक्षमार्ग में स्थिर किया है; अत: आप सच्चे मित्र हैं। आपने धर्म में स्थितिकरण करके महान उपकार किया है। अब मेरा मन इन सांसारिक भोगों से वास्तव में उदास होकर आत्मा के रत्नत्रयधर्म की आराधना में स्थिर हुआ है। अब मुझे स्वप्न में भी इस संसार की इच्छा नहीं है... अब तो अंतर में लीन होकर आत्मा के चैतन्यवैभव की साधना करूँगा।

इस प्रकार प्रायश्चित करके पुष्पडाल फिर से मुनिधर्म में स्थिर हुआ... और मुनि वन की ओर चल दिए।

वारिषेण मुनिराज की कथा हमें ऐसी शिक्षा देती है कि—कोई भी साधर्मी-धर्मात्मा कदाचित् शिथिल होकर धर्ममार्ग में डिगता हो तो उसका तिरस्कार न करके प्रेमपूर्वक उसे धर्ममार्ग में स्थिर करना चाहिए। सर्व प्रकार से उसकी सहायता करनी चाहिए। धर्म का उल्लास जागृत करके, जैनधर्म की महिमा समझाकर या वैराग्य द्वारा उसे धर्म में स्थिर करना चाहिए। तथा अपने आत्मा को भी धर्म में विशेष-विशेष स्थिर करना चाहिए। कैसी भी प्रतिकूलता आये परंतु धर्म में नहीं डिगना।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

अहो, स्व-तत्त्व का परम स्वभाव!

[नियमसार, गाथा 50 से]

नियमसार में स्वतत्त्व का स्वरूप बतलाकर उसका ग्रहण कराया है। विभावरहित आत्मा का स्वभाव जो कि ग्रहण करनेयोग्य है, अनुभवन करनेयोग्य है, जो श्रद्धा-ज्ञान में लेनेयोग्य है, और जो प्रत्येक जीव में शुद्धरूप से विराजमान है, उसकी वह बात है।

भाई, तूने सदा अपने आत्मा का विभावरूप ही अनुभव किया है, विभाव से भिन्न अपना अस्तित्व तुझे भासित नहीं हुआ। सुखस्वरूप तो तेरा तत्त्व स्वयं ही है, उसके आश्रय से ही तुझे सुख होगा। तेरे स्वगृह की बात संत तुझे बतलाते हैं। तू कोई क्षणिक नहीं है; पर्याय में उदयादि भावों के भेद पड़ते हैं, उन्हें स्वद्रव्य नहीं कहते, उन क्षणिक भावों जितना तू नहीं है। तेरे परम स्वभाव का आधार तेरा द्रव्य है—ऐसा आधार-आधेय का भेद भी वास्तव में कहाँ है ? आधार-आधेय के विकल्प स्वतत्त्व के अनुभव में नहीं है; स्वतत्त्व तो आधार-आधेय के विकल्पों से पार है। स्वभाव आधेय और द्रव्य आधार—ऐसा भी भेदविकल्प जहाँ नहीं है, वहाँ राग का आधार आत्मा—यह बात कहाँ रही ? रागभाव तो चैतन्यभाव से बिलकुल भिन्न है। अहा, स्वतत्त्व की कोई परम अद्भूत महिमा है, उसका श्रवण भी महा भाग्य से मिलता है। पूर्व काल में तो स्वतत्त्व की महिमा कभी सुनी ही नहीं थी; अब स्वतत्त्व की प्रतीति होने से कोई परभाव अपने रूप भासित नहीं होते। अरे, आत्मा तो किसे कहा जाए! यह मेरा गुण और मैं उसका आधार —इतना विकल्प भी जिसमें नहीं चल सकता, विकल्प जिसमें प्रवेश नहीं कर सकता, ऐसे आत्मा को लक्ष्य में लेने से संसार के परभावों का रस उड़ जाता है और आत्मा परभाव से छूटकर केवलज्ञानादि शुद्धभावरूप परिणमित हो जाता है।

जो आत्मा के परम सुख के अभिलाषी हों, जो मोक्षार्थी हों, वे अपने

को एक शुद्ध परम चैतन्यभावरूप ही सदा अनुभव करो। ऐसा तत्त्व, वही तेरा स्वतत्त्व है, वही मैं हूँ—ऐसे अनुभव के अतिरिक्त अन्य सब मुझसे पर है, वह मैं नहीं हूँ। चार भावों के जितने भेद हैं, उन सब भेदों के विकल्पों से पार मेरा परमतत्त्व शुद्ध चैतन्यमात्र है। निर्मलबुद्धिवाले, उज्ज्वल चित्तवाले हे मुमुक्षु जीवों! तुम ऐसा अनुभव करो। सिद्धांत में ऐसा आत्मा कहा है, उसका तुम सेवन करो; ऐसे आत्मा के सेवन से अवश्य तुम्हें मोक्षसुख का अनुभव होगा, तुम सम्यक्त्वादि अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त करोगे।●●

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

वस्तुस्वरूप के निर्णय से मोक्षमार्ग...

वस्तुस्वरूप की सच्ची दृष्टि से देखने पर प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपने परिणाम की अखंडधारा में वर्त रहा है, इसलिए अन्य द्रव्य आत्मा को राग-द्वेष का उत्पादक किंचित् भी नहीं है। द्रव्य ही अपनी परिणामधारा में वर्त रहा है, वहाँ दूसरा कोई उसमें क्या करेगा? कुछ नहीं कर सकता—ऐसा वस्तुस्वरूप निश्चित है और इसी प्रकार वस्तु सिद्ध होती है अर्थात् वस्तुस्वरूप की सच्ची श्रद्धा होती है। इससे विपरीत माने तो वह वस्तुस्वरूप नहीं है।

वस्तु सत् है तो उसकी पर्याय उससे होगी या दूसरे से? क्या वस्तु के परिणाम-प्रवाह की धारा किसी से टूट सकती है? नहीं, तो फिर वस्तु के परिणाम को कोई दूसरा कैसे करेगा? किसी प्रकार नहीं कर सकता। मेरी पर्याय का कार्य मेरा द्रव्य करता है, अपनी निर्मल पर्याय की धारारूप से मैं ही परिणमित होता हूँ—ऐसा निर्णय करने पर स्वभाव-सन्मुख ही देखना रहा; और पर के साथ एकत्वबुद्धि की मिथ्या भ्रान्ति दूर हो गई। इस प्रकार वस्तुस्वरूप के निर्णय से मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री पात्रकेसरी या पात्रस्वामी

कवि और दार्शनिक के रूप में पात्रकेसरी नाम प्रसिद्ध है। आपका यश आचार्य जिनसेनस्वामी आदि पश्चात्वर्ती आचार्यों के हृदय में अत्यधिक था।

पात्रकेसरी का जन्म उच्चकुलीन ब्राह्मण वंश में हुआ था। संभवत: वे किसी राजा के महा-अमात्यपद पर प्रतिष्ठित थे। ब्राह्मण समाज में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आराधना कोष में लिखा है—'अहिच्छत्र के अवनिपाल राजा के राज्य में 500 ब्राह्मण रहते थे। इनमें पात्रकेसरी सबसे प्रमुख थे।' इस नगर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ का एक विशाल चैत्यालय था। पात्रकेसरी

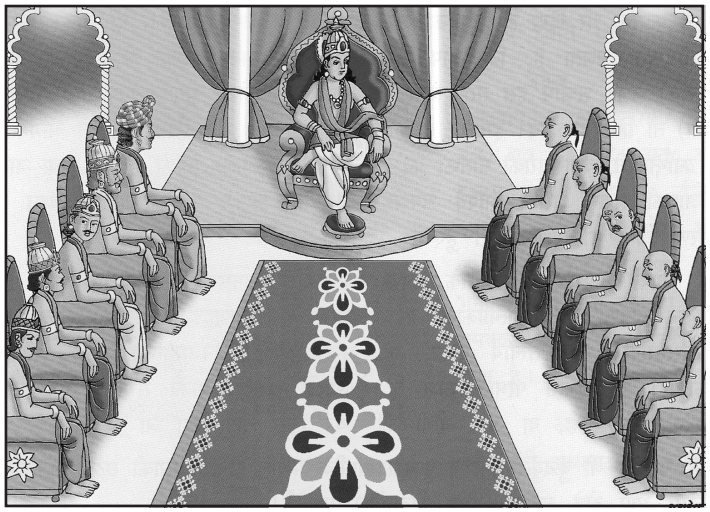

उच्चकुलीन ब्राह्मण पात्रकेसरी राजा के अमात्य पद पर

प्रतिदिन उस चैत्यालय में जाया करते थे। एक दिन वहाँ आपने चारित्रभूषण मुनि के मुख से आचार्य समन्तभद्रजी के 'देवागम' स्तोत्र अपरनाम आप्तमीमांसा का पाठ सुना। उन्होंने मुनिराज से स्तोत्र का अर्थ पूछा, पर मुनिराज अर्थ न बतला सके। पात्रकेसरी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा स्तोत्र कंठस्थ कर लिया और अर्थ विचारने लगे। विचारने पर वे

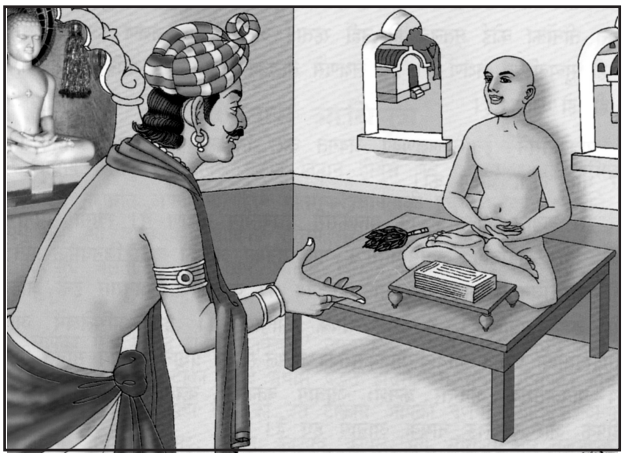

भगवान पार्श्वनाथ के मंदिर में चारित्रभूषण मुनि से 'देवागम स्तोत्र' सुनकर अमात्य पात्रकेसरी आश्चर्यचकित होकर स्तोत्र कंठस्थ करते हैं।

आश्चर्यचकित हुए। जैसे-जैसे स्तोत्र का अर्थ स्पष्ट होने लगा, वैसे-वैसे उनकी जैन तत्त्वों पर श्रद्धा उत्पन्न होती गई और अंत में उन्होंने जिनधर्म स्वीकार कर लिया।

पर उन्हें 'हेतु' के विषय में संदेह बना रहा और उस संदेह को लिए हुए सो जाने पर रात्रि के अंतिम प्रहर में स्वप्न आया, कि पार्श्वनाथ के मंदिर में 'फण' पर लिखा हुआ 'हेतु' का लक्षण प्राप्त हो जाएगा। अतएव प्रातःकाल जब वे भगवान पार्श्वनाथ के मंदिर में पहुँचे तो वहाँ उस मूर्ति के 'फण' पर निम्न प्रकार हेतुलक्षण प्राप्त हुआ—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

अर्थ : जहाँ 'अन्यथा अनुपपत्ति' लक्षण हो, वहाँ 'पक्षधर्मत्व', 'सपक्षसत्त्व', 'विपक्षव्यावृत्ति' आदि तीन लक्षणों की क्या आवश्यकता है? यदि 'अन्यथा अनुपपत्ति' लक्षण नहीं तो उक्त तीनों का कोई मतलब ही नहीं रहता। अतः हेतु का लक्षण 'अन्यथा अनुपपत्ति' लक्षण ही सुव्यवस्थित लक्षण है। इस लक्षण से बौद्ध का 'पक्षधर्मत्व' आदि त्रिलक्षण का निषेध सहज ही हो जाता है।

पात्रकेसरी ने 'हेतु' के-लक्षण को अवगत कर, निश्चिंत हो राज्य के अधिकारी पद को छोड़कर मुनि दीक्षा धारण की।

इस कथा से विदित है कि पात्रकेसरी उच्चकुलीन ब्राह्मण थे। स्वामी समंतभद्रजी के 'देवागम' स्तोत्र अपरनाम 'आप्तमीमांसा' के भाव सुनकर आपकी श्रद्धा जिनधर्म के प्रति जागृत हुई थी और जिनधर्म धारण कर मुनि हो गए थे। कथाकोष के अनुसार इन्हें अहिच्छत्र का निवासी कहा गया है। ये द्रमिल-संघ के आचार्य थे। इस अभिलेख में आचार्यदेव समंतभद्रस्वामी के पश्चात् आचार्य पात्रकेसरी को द्रमिल-संघ का प्रधान आचार्य सूचित किया है। आचार्य पात्रकेसरी के अनंतर क्रमशः आचार्य वक्रग्रीह, वज्रनंदि, सुमतिभट्टारक (देव), समयदीपक और अकलंक नाम के आचार्य हुए हैं।

आपने 'त्रिलक्षणक वर्धन' व 'पात्रकेसरी स्तोत्र' अपरनाम 'जिनेन्द्र गुण स्तुति' दो ग्रंथों की रचना की है; ऐसा जाना जाता है। उसमें से 'त्रिलक्षणक वर्धन' शास्त्र अप्राप्य है, मात्र उसका नाम प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ की मीमांसा बौद्ध विद्वान शांतरक्षित ने अपने तत्त्वसंग्रह में की है, जिससे ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ में आपने बौद्ध द्वारा प्रतिपादित 'हेतु' का लक्षण पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व व विपक्षव्यावृत्ति—ऐसे त्रिलक्षण का निषेध करते हुए 'अन्यथा अनुपपत्ति' ही 'हेतु' का लक्षण स्थापित किया है।

'पात्रकेसरी स्तोत्र' में आपने भगवान की स्तुति के रूप में समंतभद्राचार्य के 'आप्तमीमांसा' व 'युक्त्यानुशासन' की भाँति अनुपम, गंभीर विविध न्यायों का ही वर्णन कर एक अनुपम न्यायशास्त्र ही जगत के जीवों को प्रदान किया है।

आपके उक्त दोनों ग्रंथ पर से यह स्पष्ट होता है, कि आपका न्याय विषय पर अपूर्व प्रभुत्व-अधिकार था; इतना ही नहीं 'भूत चैतन्यवाद' के निरसन से, आपकी सिद्धांत विषयक ज्ञान में भी प्रबलता प्रतीत होती है।

आपका समय ईसा की ६-७वीं शताब्दी माना जाता है।

आचार्यदेव श्री पात्रकेसरी भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
आचार्य ऋषिपुत्र

आचार्य ऋषिपुत्र ज्योतिष के प्रकांड विद्वान होने से जैन जगत में अधिक प्रसिद्धता को प्राप्त नहीं है। तदुपरांत अपनी परिणति में वीतराग-विज्ञानता की प्रचुरता के कारण आपने अपने साहित्य में कहीं भी अपने वंश आदि का परिचय नहीं दिया है। मात्र अन्यमत के ग्रंथों पर से इतना ही पता चलता है, कि आप ज्योतिष विद्या के दिगम्बर प्रकांड पंडित व विशेषज्ञ आचार्य थे।

आपका एक प्रसिद्ध ग्रंथ 'पाशकेवली' उपलब्ध है, परंतु आपके वचन जैनेतर ग्रंथ 'वाराहिसंहिता' की भट्टोत्पलि-टीका आदि ग्रंथों में उद्धृत होने से, उस समय में आपकी प्रसिद्धि का काफी अनुमान होता है। यहाँ तक की उस टीका में आपकी गणना ज्योतिष के अन्यमत के प्राचीन विद्वान आचार्य आर्यभट्ट, कणाद, काश्यप, कपिल, गर्ग, पाराशर और बलभद्र के साथ की गई है। इससे आप प्राचीन एवं प्रभावक आचार्य ज्ञात होते हैं। आप ज्योतिष आचार्य गर्ग के पुत्र होने से ही आपको ऋषिपुत्र कहा जाता हो, ऐसा इतिहासकारों का अनुमान है। आपका निवासस्थान उज्जैन के आसपास ही होने का भी इतिहासविदों का अनुमान है।

निज आत्मस्वभावोत्पन्न रत्नत्रयमय परिणत आपको निमित्तशास्त्र, शकुनशास्त्र तथा ग्रहों की स्थिति द्वारा भूत, भविष्यत व वर्तमानकालीन फल, भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, मेलापक, आयाद्यानयन, गृहोपकरण, गृहप्रवेश, उल्कापात आदि निमित्त तथा अन्य विविध भाँति के ज्योतिषक संबंधित बातों का ज्ञान था। आपके ज्योतिषविषयक ग्रंथों का प्राचीन भारत में पर्याप्त प्रचार रहा है, तथा उत्तरकालीन आचार्यों ने आपके सिद्धांतों को अपने ग्रंथों में उद्धृत करके आपके वचनों की प्रमाणिकता स्वीकृत की है।

'त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिष' आपकी प्रारंभिक रचना मानी गई है, वह मात्र सूत्रात्मक रचना है। विभिन्न ग्रंथों में उद्धरित आपकी संहिता विषयक रचना का भी अनुमान लगाया जाता है। इसके अलावा एक 'पाशकेवली' नामक, विषय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भी उपलब्ध होती है।

इतिहासकारों के मतानुसार आप ईसा की छठवीं-सातवीं शताब्दी के आचार्य माने गए हैं।

आचार्यदेव श्री ऋषिपुत्र भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

परद्रव्यों को विकार का कर्ता मानना अपराध है

अरे जीव! यदि परद्रव्य ही तुझे जबरन अशुद्धता कराते हों तो उस अशुद्धता से छूटने का अवसर कब आवेगा? क्योंकि परद्रव्य तो जगत में सदा हैं; यदि वही विकार कराते हों तब भी निरंतर विकार होता ही रहे और विकार से छूटने का अवसर ही कभी प्राप्त न हो। तेरा शुद्ध या अशुद्ध परिणमन तुझसे ही है—ऐसा तू जान ले तो शुद्धद्रव्य के आश्रय से शुद्धता प्रगट करके अशुद्धता को दूर करने का अवसर तुझे अवश्य आयेगा।

तू अपनी स्वतंत्रता जान कि मैं बाह्योन्मुख हुआ, इसलिए मुझे अशुद्धता हुई; और मैं अंतरोन्मुख होऊँ तो मुझे शुद्धता हो। मेरी अशुद्धता में या शुद्धता में परद्रव्य का किंचित्मात्र हाथ नहीं है।—ऐसी स्वतंत्रता को जानकर स्वसन्मुख होने से शुद्धता का अवसर आता है।

परंतु जो जीव अपनी स्ववस्तु को नहीं जानता, जिसका समस्त ज्ञान विपरीत है, जिसके सम्यक्त्वचक्षु मुँद गए हैं, वह जीव मोहशत्रु की सेना को नहीं जीत सकता। उसका अपराध क्या?—कि वह कर्मादि परद्रव्यों को विकार का कर्ता मानता है, वह उसका महान अपराध है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला

कुल को भव समुद्र में डुबानेवाला कौन

जो गिह कुडुंब सामी, संतो मिच्छत्त रोयणं कुणई।
तेण सयलो वि वंसो, परिखित्तो भव समुद्दम्मि॥77॥

भावार्थ – कुल का स्वामी यदि मिथ्या देवादि की रुचि–सराहना करता है तो उसके कुल के सभी लोग वैसा ही आचरण करते हैं और कहते हैं कि 'हमारे बड़े ऐसा ही करते आये हैं।' इस प्रकार परिवार के सब ही जीवों के मिथ्यात्व की पुष्टि हो जाने से वे संसार में ही भ्रमण करते हैं। अत: घर के स्वामी के द्वारा मिथ्यात्व की थोड़ी सी भी प्रशंसादि की जानी योग्य नहीं है॥77॥

मिथ्या पर्वों के आचरनेवालों को सम्यक्त्व नहीं

कुण्ड चउत्थी णवमी, वारस पिण्डप्पादण पमुहाई।
मिच्छत्त भावगाइ, कुणंति तेसिं ण सम्मत्तं॥78॥

अर्थ – चौथ, नवमी एवं बारस आदि कई अन्य भी पर्व हैं, जिनमें मिथ्यात्व, विषय–कषाय की वृद्धि होती है ऐसे समस्त प्रकार के मिथ्या पर्वों के आचरण करनेवालों को सम्यग्दर्शन नहीं है, वे सब मिथ्यादृष्टि ही हैं॥78॥

कुटुंब का मिथ्यात्व हरनेवाले विरल हैं

जह अइ कलम्मि खुत्तं, सगडं कड्ढंति केवि धुरि धवला।
तह मिच्छाउ कुडुंबं, इह विरला केवि कड्ढंति॥79॥

भावार्थ – जो स्वयं दृढ़ श्रद्धानी हैं वे अपने समस्त कुटुंब को उपदेशादि के द्वारा मिथ्यात्व से रहित करते हैं, सो ऐसे धर्मात्मा बहुत थोड़े हैं॥79॥

प्रकट भी जिनदेव की अप्राप्ति

जह बद्दलेण सूरं, महियल पयडं पि णेअ पिच्छंति।
मिच्छत्तस्सय उदये, तहे ण णिअंति जिणदेवं॥80॥

भावार्थ – अरिहंतदेव का स्वरूप जैसा है, वैसा युक्ति और शास्त्र से अविरुद्ध परीक्षा करनेवालों को तो प्रकट दिखाई देता है, परंतु जिनके मिथ्यात्व का उदय है, उन्हें कुछ भी नहीं भासता॥80॥

मिथ्यात्वरत का मनुष्य जन्म निष्फल है

किं सो वि जणणि जाओ, जाओ जणणी ण किं गओ बुड्ढिं।
जइ मिच्छरओ जाओ, गुणेसु तह मच्छरं वहइ॥81॥

भावार्थ - मनुष्य जन्म धारण करने का फल तो यह है कि जिनवाणी का अभ्यास करके मिथ्यात्व का तो त्याग करना और सम्यक्त्वादि गुणों को अंगीकार करना। जिसने यह कार्य नहीं किया उसका मनुष्य जन्म पाना भी न पाने के बराबर है॥81॥

मात्र वेषी दूर से ही त्याज्य है

वेस्साण वंदियाण य, महाणडूवाण जक्ख सिक्खाणं।
भत्ताभर कट्ठाणं, विरयाणं जंति दूरेण॥82॥

अर्थ - मात्र वेष धारण किया है, जिन्होंने उन्हें वंदन करने से, उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करने से तथा उनकी विशेष भक्ति करने से जीव महा भवसमुद्र में डूबते हैं, इसलिए उन्हें दूर से ही त्याग देना चाहिए॥82॥

जिनमार्ग में चलनेवाले अमार्गी प्रशंसनीय हैं

सुद्धे मग्गे जाया, सुहेण गच्छंति सुद्ध मग्गम्मि।
जेहि अमग्गे जाया, मग्गे गच्छंति ते बुज्जं॥83॥

भावार्थ - जिनके परंरा से जिनधर्म चला आया है, वे जिनधर्म में प्रवर्तते हैं, सो तो ठीक ही है परंतु जो अन्य कुल में जन्म लेकर जिनधर्म में प्रवर्तन करते हैं, सो यह आश्चर्य है, वे अधिक प्रशंसा के योग्य हैं॥83॥

पापियों की विवेकहीन बुद्धि होती है

मिच्छत्तसेवगाणं, विग्घं सयाइं पि विंति णो पावा।
विग्घं लवम्मि वि पडिए, दिढा धम्माण य भण्णंति॥84॥

अर्थ - कुदेवादि का सेवन करने से सैकड़ों विघ्न आते हैं, उन्हें तो मूर्ख लोग गिनते ही नहीं हैं परंतु धर्म का सेवन करनेवाले धर्मात्मा पुरुषों को यदि पूर्व कर्म के उदय से कदाचित्-किंचित् भी विघ्न आ जाए तो ऐसा कहते हैं कि 'धर्म सेवन करने से ही यह विघ्न आया है।' ऐसी विवेकहीन विपरीत बुद्धि होती है, सो यह मिथ्यात्व की महिमा है॥84॥

मिथ्यात्वयुत सुख से सम्यक्त्वयुत दु:ख भला है

सम्मत्तसंजुयाणं, विग्घं पि हु होइ उच्छउ सरिच्छं।
परमुच्छवं पि मिच्छत्त, संजुअं अइ महाविग्घं॥85॥

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीवों को पूर्व कर्म के उदय से यदि कोई उपसर्ग आदि भी आ जाए तो वहाँ उनकी श्रद्धा निश्चल रहने से पाप कर्म की निर्जरा होती है और पुण्य का अनुभाग बढ़ जाता है, जिससे उन्हें भविष्य में महान सुख होगा इसलिए उनको विघ्न भी उत्सव के समान है परंतु मिथ्यात्व सहित जीवों को किसी पूर्व पुण्य कर्म के उदय से वर्तमान में तो सुख सा दिखाई देता है, जिसे वे अत्यंत आसक्तिपूर्वक भोगते हैं, किंतु उससे तीव्र पाप का बंध होने से आगामी नरकादि का महा दु:ख होगा, इसलिए उन्हें उत्सव भी विघ्न के समान है। अत: ऐसा जानना कि सम्यक्त्व सहित दु:ख भी भला है किंतु मिथ्यात्व सहित सुख भी भला नहीं है॥85॥

दृढ़ सम्यग्दृष्टि इन्द्र द्वारा भी वंदनीय हैं

इंदो वि ताण पणमइ, हीलंतो णियरिद्धि वित्थारं।
मरणंते वि हु पत्ते, सम्मत्तं जे ण छंडंति॥86॥

भावार्थ - इन्द्र भी यह जानता है कि जिनके दृढ़ सम्यग्दर्शन है, वे ही जीव शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं इसलिए सम्यक्त्व ही अविनाशी ऋद्धि है, क्योंकि वह आत्मा का स्वरूप है और ये अन्य ऋद्धियाँ—इन्द्र विभूति आदि तो विनाशीक हैं, दु:ख की कारण हैं। अत: वह भी सम्यग्दृष्टियों को नमस्कार करता है॥86॥

मोक्षार्थी किसी कीमत पर सम्यक्त्व नहीं छोड़ता

छंडंति णियअ जीवं, तिणं व मुक्खत्थिणो तउ ण सम्मं।
लब्भइ पुणो वि जीवं, सम्मत्तं हारियं कुत्तो॥87॥

भावार्थ - कर्मोदय के आधीन मरण और जीवन तो अनादि ही से होता आया है, किंतु जिनधर्म और सम्यक्त्व की प्राप्ति महा दुर्लभ है, इसलिए प्राणांत होता हो तो भी सम्यक्त्व छोड़ना योग्य नहीं है॥87॥

सम्यग्दर्शन ही वास्तविक वैभव है

गय विहवा वि सविहवा, सहिया सम्मत्त रयण राएण।
सम्मत्त रयण रहिआ, संते वि धणे दरिद्दंत्ति॥88॥

भावार्थ - जिन्हें आत्मज्ञान हुआ है, उन्हें धनादि परद्रव्य के होने और न होने से हर्ष-विषाद नहीं होता, वे तो वीतरागी सुख के आस्वादी अर्थात् अभिलाषी हैं। इसलिए वे ही सच्चे धनवान हैं और अज्ञानी तो परद्रव्य की हानि-वृद्धि में सदा आकुलित हैं, इसलिए वे दरिद्र ही हैं—ऐसा जानना॥88॥

सम्यग्दृष्टि को धन से भी सार जिनपूजा है

जिणपूयण उच्छावे, जइ कुवि सद्दाण देइ धनकोडी।
मुत्तूण तं असारं, सारं थिरयंति जिणपूयं॥89॥

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि को अवश्य ज्ञान-वैराग्य होता है, इसलिए वीतरागी की पूजा आदि में उसे परम रुचि बढ़ती है। धर्मकार्य के समय में यदि कोई व्यापारादि का कार्य आ जाए तो वह उसे दु:खदायी ही समझता है और धर्मकार्य को छोड़कर पापकार्य में नहीं लगता है—यह ही सम्यग्दृष्टि का चिह्न है और जिसे धर्मकार्य तो रुचता नहीं है, जिस-तिस प्रकार उसे पूरा करना चाहता है तथा व्यापारादि को रुचिपूर्वक करता है, सो यह ही मिथ्यादृष्टि का चिह्न है—ऐसा जानना॥89॥

जिनपूजन और कुदेवपूजन की तुलना

तित्थयराणं पूया, सम्मत्त-गुणाण-कारणं भणिया।
सोवि य मिच्छत्तयरी, जिणसमये देसियापूयं॥90॥

भावार्थ - जिसमें जो गुण होते हैं, उसकी सेवा करने से वे ही गुण प्राप्त हो जाते हैं—ऐसा न्याय है। अरिहंतदेव का स्वरूप ज्ञान-वैराग्यमय है। अत: उनकी पूजा, ध्यान एवं स्मरणादि करने से ज्ञान-वैराग्यरूप सम्यक्त्व गुण की प्राप्ति होती है और सरागी देवों का स्वरूप राग-द्वेष एवं लोभ-क्रोधादि विकारमय है। अत: उनकी पूजा-भक्ति करने से मिथ्यात्वादि पुष्ट होते ही होते हैं—ऐसा जानना॥90॥

तत्त्वविद् की पहिचान

जं जं जिण आणाए, तं चिय मण्णइ ण मण्णए सेसं।
जाणइ लोयपवाहे, ण हु तत्तं सोय तत्तविऊ॥91॥

भावार्थ - जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे जिनभाषित धर्म को तो सत्यार्थ जानते हैं और अन्य मिथ्यादृष्टि लोगों की सब रीति को मिथ्या जानते हैं॥91॥

साभार : उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला

समाचार-दर्शन

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में मनाया गया जैन मंदिर का 8वाँ वार्षिक उत्सव

बेसवां : मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में स्थित श्री 1008 महावीर मंदिर में धूमधाम के साथ मनाया। इसमें तीर्थधाम मङ्गलायतन से पंडित सुधीर शास्त्री और अन्य विद्वानों ने भी अपनी सहभागिता दी। कार्यक्रम के निर्देशक मयंक जैन ने बताया कि इस जैन मंदिर का भव्य पंचकल्याणक समारोह दिसंबर 2010 में किया गया था। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग और पंडित कैलाशचंदजी की प्रेरणा से, श्री पवन जैन द्वारा इस मंदिर का निर्माण कराया गया था।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में स्थित श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर का 8वाँ वार्षिक उत्सव बहुत ही धूमधाम के साथ मनाया गया। सुबह से ही मंदिर में आनेवाले विद्यार्थियों का प्रारंभ रहा और मंगल गीतों से पूरा परिसर गूंजा। भगवान महावीर के मस्तकाभिषेक से इस उत्सव की शुरुआत की गई। इसमें विशेष पूजा-अर्चना के माध्यम से भगवान के पाँच कल्याणकों के बारे में समझाया गया। तीर्थधाम मङ्गलायतन से पधारे पंडित सुधीर शास्त्री द्वारा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को आत्मबल किस तरीके से हासिल करना है। जीवन में किन-किन कठिनाइयों का सामना करने के बाद हमें अपने जीवन को सफल बनाना है, और बताया कि जितने भी महान पुरुष हुए आज तक बेशक अपने पुरुषार्थ से ही उन्होंने अपने जीवन में सफलता प्राप्त की। इस महान उत्सव में विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर के. वी. एस. कृष्णा ने अपने उद्‌गार व्यक्त किये और बताया कि इस तरह की गतिविधियाँ विश्वविद्यालय में होनी चाहिए और सभी विद्यार्थियों को अपने जीवन में सदाचार और सब कार्यों में अपना मन लगाना चाहिए कार्यक्रम के निदेशक मयंक जैन ने बताया कि गत 2010 में होनेवाले पंचकल्याणक की स्मृति में यह दिवस प्रत्येक वर्ष मनाया जाता है और इसमें भव्य मंगल पूजन अर्चना और आरती के साथ यह कार्य संपन्न होता है। इस महोत्सव में विश्वविद्यालय के उप कुलसचिव डॉ. मनोज राणा, डॉ. प्रकाश शुक्ला, डॉ. सिद्धार्थ जैन और शुभंकर राय आदि उपस्थित थे।

वैराग्य समाचार

भोपाल : श्री सनतकुमार जैन भोपाल का 9 नवम्बर 2018 को स्वर्गवास हो गया। आप एक अच्छे आत्मार्थी थे। निरन्तर तत्त्वज्ञान के माध्यम से आत्मकल्याण में लगे थे। दिवंगत आत्मा शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त हो ऐसी भावना है।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द संपन्न

वस्त्रापुर, अहमदाबाद : 7 दिसम्बर से 12 दिसम्बर 2018 तक पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावनायोग में, श्री शान्तिनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव ऐतिहासिक उपलब्धियों के साथ सानन्द संपन्न हुआ। यह प्रतिष्ठा महामहोत्सव ब्रह्मचारी जतीशभाई सनावद के प्रतिष्ठाचार्यत्व में एवं पंडित रजनीभाई दोशी हिम्मतनगर के निर्देशन में हुआ। मंच का संपूर्ण संचालन पंडित संजय शास्त्री मङ्गलायतन ने किया।

इस महामहोत्सव में डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर; पंडित वीरेन्द्रजी, आगरा; पंडित राजेन्द्रजी, जबलपुर; पंडित देवेन्द्रजी, बिजौलियां; पंडित चेतनभाई, राजकोट; पंडित बाबूभाई, फतेपुर; पंडित शैलेषभाई, तलोद; पंडित अनिलजी, भिण्ड; पंडित हितेशभाई चोबटिया, मुम्बई; पंडित कमलजी, पिडावा; पंडित सचिनजी, चैतन्यधाम; एवं समस्त स्थानीय विद्वानों ने ज्ञानगंगा बहायी। सह प्रतिष्ठाचार्य पंडित अजितजी, अलवर; ब्रह्मचारी श्रेणिकजी, जबलपुर; ब्रह्मचारी मनोजजी, जबलपुर; पंडित सम्मेदजी, इंदौर; मङ्गलार्थी अनुभवजी, जबलपुर; मङ्गलार्थी देवेन्द्र, ग्वालियर; श्री सुबोधजी, ग्वालियर आदि ने शुद्धाम्नायपूर्वक प्रतिष्ठा संपन्न करायी।

इस प्रतिष्ठा महामहोत्सव में देश के हजारों श्रेष्ठी एवं साधर्मियों ने तत्त्वज्ञान का लाभ प्राप्त किया।

आत्मार्थी छात्रों के लिए सुनहरा अवसर

बड़े ही हर्ष का विषय है पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में आदरणीय ब्रह्मचारी रविन्द्रजी आत्मन की पावन प्रेरणा से तथा पण्डित महेशचन्द्रजी के कुशल मार्गदर्शन में श्री सिद्धक्षेत्र गोपाचल की तलहटी में स्थित ग्वालियर महानगर में, अंग्रेजी माध्यम से कक्षा सातवीं एवं आठवीं के तत्त्वरुचिवन्त आत्मार्थी छात्र जो सुयोग्य विद्वानों व कुशल शिक्षकों के मार्गदर्शन में रहकर लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक, साहित्यिक, नैतिक, खेल, व्यायामादि विधाओं में पारंगत होकर अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहते हैं। वे शीघ्र संपर्क करें।

ऑनलाइन फार्म भरने के लिए नीचे दिये नंबरों पर संपर्क करें।

प्राचार्य, **श्री समयसार विद्यानिकेतन**
9039365001

निदेशक, **पं. शुद्धात्मप्रकाश शास्त्री**
9893224022

संयोजक, **पं. धनेन्द्र शास्त्री**
958910484

प्रभारी, **सतीश जैन ठेकेदार**
9425114625

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

पूज्य गुरुदेवश्री का समाधि दिवस

तीर्थधाम मङ्गलायतन : 29 नवम्बर 2018 तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार ने पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का समाधि दिवस मनाया। प्रात: जिनेन्द्र पूजन, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन तत्पश्चात् पंडित संजय शास्त्री द्वारा पंचविंशतिका पर स्वाध्याय कराया गया। संध्याकाल में वैराग्य भक्ति, प्रोजेक्टर द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन पर आधारित चलचित्र प्रस्तुत किया गया। गुरुदेवश्री की स्तुतिपूर्वक, पंडित सचिनजी, पंडित अशोक लुहाड़िया, पंडित संजय शास्त्री, पंडित सुधीर शास्त्री एवं सभी कक्षाओं के एक-एक मंगलार्थी ने पूज्य गुरुदेवश्री पर प्रासंगिक भाव प्रस्तुत किये।

इस अवसर पर समस्त मङ्गलायतन परिवार एवं श्री पवन जैनजी ने भी अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त की। इस अवसर पर पंडित अशोक लुहाड़ियाजी ने, पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन सुनने के नियम का आह्वान किया।

प्रकाशन तिथि - 14 जनवरी 2019 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 जनवरी 2019
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

ॐ || जय जिनेन्द्र || ॐ

आचार्यकुन्दकुन्ददेव

गोपाचल सिद्धक्षेत्र से प्रसिद्ध,
ऐतिहासिक नगरी ग्वालियर में,
तिघरा दिगम्बर जैन मंदिर का

पूज्य गुरुदेवश्री

श्री १००८ पार्श्वनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव

दिनाँक- 16 जनवरी से 21 जनवरी 2019

स्थान - काशी नगरी (ग्वालियर)

प्रतिष्ठाचार्य - बा.ब्र.प.श्री अभिनन्दन कुमार जी

निर्देशक - तीर्थधाम मंगलायतन

आयोजक - श्री पार्श्वनाथ पंचकल्याणक समिति, ग्वालियर

तत्तवाधान - श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, ग्रेटर ग्वालियर

आप सभी से निवेदन है कि सभी लोग इस महामहोत्सव में बढ़चढ़ कर भाग ले और पुण्य अर्जित करें।
सभी लोग अपने परिवार गण को एवं इष्ट मित्रों को इस पावन प्रसंग में जोड़ें। इन्द्र इन्द्राणी,
राजा रानी, लोकान्तिक देव, अष्ट देवी आदि पदों को लेकर अपना भाग्य जगाएं।

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com